श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

UG-11.25 - पंचम सोपान (अर्थ)

श्रीभगवानुवाच

गुणानामसमिश्राणां(म्), पुमान् येन यथा भवेत् ।

तन्मे पुरुषवर्येद- मुपधारय शं(म्)सतः ॥ 1॥

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं- पुरुषप्रवर उद्धव जी! प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग गुणों का प्रकाश होता है। उनके कारण प्राणियों के स्वभाव में भी भेद हो जाता है। अब मैं बतलाता हूँ कि किस गुण से कैसा-कैसा स्वभाव बनता है। तुम सावधानी से सुनो।

शमो दमस्तितिक्षेक्षा, तपः(स्) सत्यं(न्) दया स्मृतिः ।

तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा, ह्रीर्दयादिः(स्) स्वनिर्वृतिः ॥ 2॥

सत्त्वगुण की वृत्तियाँ हैं-शम (मनःसंयम), दम (इन्द्रियनिग्रह), तितिक्षा (सहिष्णुता), विवेक, तप, सत्य, दया, स्मृति, सन्तोष, त्याग, विषयों के प्रति अनिच्छा, श्रद्धा, लज्जा (पाप करने में स्वाभाविक संकोच), आत्मरति, दान, विनय और सरलता आदि।

काम ईहा मदस्तृष्णा, स्तम्भ आशीर्भिदा सुखम् ।

मदोत्साहो यशः(फ्) प्रीतिर्- हास्यं(व्ँ) वीर्यं(म्) बलोद्यमः ॥ 3॥

रजोगुण की वृत्तियाँ हैं-इच्छा, प्रयत्न, घमंड, तृष्णा (असन्तोष), ऐंठ या अकड़, देवताओं से धन आदि की याचना, भेदबुद्धि, विषयभोग, युद्धादि के लिये मदजनित उत्साह, अपने यश में प्रेम, हास्य, पराक्रम और हठपूर्वक उद्योग करना आदि।

क्रोधो लोभोऽनृतं(म्) हिं(म्)सा, याच्ञा दम्भः(ख्) क्लमः(ख्) कलिः ।

शोकमोहौ विषादार्ती, निद्राऽऽशा भीरनुद्यमः ॥ 4॥

तमोगुण की वृत्तियाँ हैं-क्रोध (असहिष्णुता), लोभ, मिथ्या भाषण, हिंसा, याचना, पाखण्ड, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, दीनता, निद्रा, आशा, भय और अकर्मण्यता आदि।

सत्त्वस्य रजसश्चैतास्- तमसश्चानुपूर्वशः।

वृत्तयो वर्णितप्रायाः(स्), सन्निपातमथो शृणु ॥ 5॥

इस प्रकार क्रम से सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण की अधिकांश वृत्तियों का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया। अब उनके मेल से होने वाली वृत्तियों का वर्णन सुनो।

सन्निपातस्त्वहमिति, ममेत्युद्धव या मतिः ।

व्यवहारः(स्) सन्निपातो, मनोमात्रेन्द्रियासुभिः ॥ 6॥

उद्धव जी! 'मैं हूँ और यह मेरा है' इस प्रकार की बुद्धि में तीनों गुणों का मिश्रण है। जिन मन, शब्दादि विषय, इन्द्रिय और प्राणों के कारण पूर्वोक्त वृत्तियों का उदय होता है, वे सब-के-सब सात्त्विक, राजस और तामस हैं।

धर्मे चार्थे च कामे च, यदासौ परिनिष्ठितः ।

गुणानां(म्) सन्निकर्षोऽयं(म्), श्रद्धारतिधनावहः ॥ 7॥

जब मनुष्य धर्म, अर्थ और काम में संलग्न रहता है, तब उसे सत्त्वगुण से श्रद्धा, रजोगुण से रति और तमोगुण से धन की प्राप्ति होती है। यह भी गुणों का मिश्रण ही है।

प्रवृत्तिलक्षणे निष्ठा, पुमान् यर्हि गृहाश्रमे ।

स्वधर्मे चानुतिष्ठेत, गुणानां(म्) समितिर्हि सा ॥ 8॥

जिस समय मनुष्य स्कन कर्म, गृहस्थाश्रम और स्वधर्माचरण में अधिक प्रीति रखता है, उस समय भी उसमें तीनों का गुणों का मेल ही समझना चाहिये।

पुरुषं(म्) सत्त्वसं(यँ)युक्त- मनुमीयाच्छमादिभिः।

कामादिभी रजोयुक्तं(ङ्), क्रोधाद्यैस्तमसा युतम् ॥ 9॥

मानसिक शान्ति और जितेन्द्रियता आदि गुणों से सत्त्वगुणी पुरुष की, कामना आदि से रजोगुणी पुरुष की और क्रोध-हिंसा आदि से तमोगुणी पुरुष की पहचान करे।

यदा भजति मां(म्) भक्त्या, निरपेक्षः(स्) स्वकर्मभिः ।

तं(म्) सत्त्वप्रकृतिं(वँ) विद्यात्, पुरुषं(म्) स्त्रियमेव वा ॥ 10॥

पुरुष हो, चाहे स्त्री-जब वह निष्काम होकर अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मों द्वारा मेरी आराधना करे, तब उसे सत्त्वगुणी जानना चाहिये।

यदा आशिष आशास्य,मां(म्) भजेत स्वकर्मभिः ।

तं(म्) रजः(फ्)प्रकृतिं(वँ) विद्याद्- धिं(म्)सामाशास्य तामसम्॥ 11॥

सकामभाव से अपने कर्मों के द्वारा मेरा भजन-पूजन करने वाला रजोगुणी है और जो अपने शत्रु की मृत्यु आदि के लिये मेरा भजन-पूजन करे, उसे तमोगुणी समझना चाहिये।

सत्त्वं(म्) रजस्तम इति, गुणा जीवस्य नैव मे ।

चित्तजा यैस्तु भूतानां(म्), सज्जमानो निबध्यते ॥ 12॥

सत्त्व, रज और तम-इन तीनों गुणों का कारण जीव का चित्त है। उससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। इन्हीं गुणों के द्वारा जीव शरीर अथवा धन आदि में आसक्त होकर बन्धन में पड़ जाता है।

यदेतरौ जयेत् सत्त्वं(म्), भास्वरं(वँ) विशदं(म्) शिवम् ।

तदा सुखेन युज्येत, धर्मज्ञानादिभिः(फ्) पुमान् ॥ 13॥

सत्त्वगुण प्रकाशक, निर्मल और शान्त है। जिस समय वह रजोगुण और तमोगुण को दबाकर बढ़ता है, उस समय पुरुष सुख, धर्म और ज्ञान आदि का भाजन हो जाता है।

यदा जयेत्तमः(स्) सत्त्वं(म्), रजः(स्) सं(ङ्)गं(म्) भिदा चलम् ।

तदा दुःखेन युज्येत, कर्मणा यशसा श्रिया ॥ 14॥

रजोगुण भेदबुद्धि का कारण है। उसका स्वभाव है आसक्ति और प्रवृत्ति। जिस समय तमोगुण और सत्त्वगुण को दबाकर रजोगुण बढ़ता है, उस समय मनुष्य दुःख, कर्म, यश और लक्ष्मी से सम्पन्न होता है।

यदा जयेद् रजः(स्) सत्त्वं(न्), तमो मूढं(लँ) लयं(ञ्) जडम् ।

युज्येत शोकमोहाभ्यां(न्), निद्रया हिं(म्)सयाऽऽशया॥ 15॥

तमोगुण का स्वरूप है अज्ञान। उसका स्वभाव है आलस्य और बुद्धि की मूढ़ता। जब वह बढ़कर सत्त्वगुण और रजोगुण को दबा लेता है, तब प्राणी तरह-तरह की आशाएँ करता है, शोक-मोह में पड़ जाता है, हिंसा करने लगता है अथवा निद्रा-आलस्य के वशीभूत होकर पड़ रहता है।

यदा चित्तं(म्) प्रसीदेत, इन्द्रियाणां(ञ्) च निर्वृतिः ।

देहेऽभयं(म्) मनोऽसं(ङ्)गं(न्), तत् सत्त्वं(वँ) विद्धि मत्पदम् ॥ 16॥

जब चित्त प्रसन्न हो, इन्द्रियाँ शान्त हों, देह निर्भय हो और मन में आसक्ति न हो, तब सत्त्वगुण की वृद्धि समझनी चाहिये। सत्त्वगुण मेरी प्राप्ति का साधन है।

विकुर्वन् क्रियया चाधी- रनिवृत्तिश्च चेतसाम् ।

गात्रास्वास्थ्यं(म्) मनो भ्रान्तं(म्), रज एतैर्निशामय ॥ 17॥

जब काम करते-करते जीव की बुद्धि चंचल, ज्ञानेद्रियाँ असन्तुष्ट, कर्मेंदियाँ विकारयुक्त, मन भ्रान्त और शरीर अस्वस्थ हो जाये, तब समझना चाहिये कि रजोगुण जोर पकड़ रहा है।

सीदच्चित्तं(वँ) विलीयेत, चेतसो ग्रहणेऽक्षमम् ।

मनो नष्टं(न्) तमो ग्लानिस्-तमस्तदुपधारय॥ 18॥

जब चित्त ज्ञानेद्रियों के द्वारा शब्दादि विषयों को ठीक-ठीक समझने में असमर्थ हो जाये और खिन्न होकर लीन होने लगे, मन सूना-सा हो जाये तथा अज्ञान और विषाद की वृद्धि हो, तब समझना चाहिये कि तमोगुण वृद्धि पर है।

एधमाने गुणे सत्त्वे, देवानां(म्) बलमेधते ।

असुराणां(ञ्) च रजसि, तमस्युद्धव रक्षसाम् ॥ 19॥

उद्धव जी! सत्त्वगुण के बढ़ने पर देवताओं का, रजोगुण के बढ़ने पर असुरों का और तमोगुण के बढ़ने पर राक्षसों का बल बढ़ जाता है।

सत्त्वाज्जागरणं(वँ) विद्याद् रजसा स्वप्नमादिशेत् ।

प्रस्वापं(न्) तमसा जन्तोस्- तुरीयं(न्) त्रिषु सन्ततम् ॥ 20॥

सत्त्वगुण से जाग्रत्-अवस्था, रजोगुण से स्वप्नावस्था होती है। तुरीय इन तीनों में एक-सा व्याप्त रहता है। वही शुद्ध और एकरस आत्मा है।

उपर्युपरि गच्छन्ति, सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः ।

तमसाधोऽध आमुख्याद्, रजसान्तरचारिणः॥ 21॥

वेदों के अभ्यास में तत्पर ब्राह्मण सत्त्वगुण के द्वारा उत्तरोत्तर ऊपर के लोकों में जाते हैं। तमोगुण से जीवों को वृक्षादिपर्यन्त अधोगति प्राप्त होती है और रजोगुण से मनुष्य-शरीर मिलता है।

सत्त्वे प्रलीनाः(स्) स्वर्यान्ति, नरलोकं(म्) रजोलयाः ।

तमोलयास्तु निरयं(यँ), यान्ति मामेव निर्गुणाः ॥ 22॥

जिसकी मृत्यु सत्त्वगुणों की वृद्धि के समय होती है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है; जिसकी रजोगुण की वृद्धि के समय होती है, उसे मनुष्य-लोक मिलता है और जो तमोगुण की वृद्धि के समय मरता है, उसे नरक की प्राप्ति होती है। परन्तु जो पुरुष त्रिगुणातीत-जीवन्मुक्त हो गये हैं, उन्हें मेरी ही प्राप्ति होती है।

मदर्पणं(न्) निष्फलं(वँ) वा, सात्त्विकं(न्) निजकर्म तत् ।

राजसं(म्) फलसं(ङ्)कल्पं(म्), हिं(म्)साप्रायादि तामसम् ॥ 23॥

जब अपने धर्म का आचरण मुझे समर्पित करके अथवा निष्काम भाव से किया जाता है, तब वह सात्त्विक होता है। जिस कर्म के अनुष्ठान में किसी फल की कामना रहती है, वह राजसिक होता है और

जिस कर्म में किसी को सताने अथवा दिखाने आदि का भाव रहता है, वह तामसिक होता है।

कैवल्यं(म्) सात्त्विकं(ञ्) ज्ञानं(म्), रजो वैकल्पिकं(ञ्) च यत् ।

प्राकृतं(न्) तामसं(ञ्) ज्ञानं(म्), मन्निष्ठं(न्) निर्गुणं(म्) स्मृतम् ॥ 24॥

शुद्ध आत्मा का ज्ञान सात्त्विक है। उसको कर्ता-भोक्ता समझना राजस ज्ञान है और उसे शरीर समझना तो सर्वथा तामसिक है। इन तीनों से विलक्षण मेरे स्वरूप का वास्तविक ज्ञान निर्गुण ज्ञान है।

वनं(न्) तु सात्त्विको वासो, ग्रामो राजस उच्यते ।

तामसं(न्) द्यूतसदनं(म्), मन्निकेतं(न्) तु निर्गुणम् ॥ 25॥

वन में रहना सात्त्विक निवास है, गाँव में रहना राजस है और जुआघर में रहना तामसिक है। इन सबसे बढ़कर मेरे मन्दिर में रहना निर्गुण निवास है।

सात्त्विकः(ख्) कारकोऽसं(ङ्)गी, रागान्धो राजसः(स्) स्मृतः ।

तामसः(स्) स्मृतिविभ्रष्टो, निर्गुणो मदपाश्रयः ॥ 26॥

अनासक्त भाव से कर्म करने वाला सात्त्विक है, रागान्ध होकर कर्म करने वाला राजसिक है और पूर्वा पर विचार से रहित होकर करने वाला तामसिक है। इनके अतिरिक्त जो पुरुष केवल मेरी शरण में रहकर बिना अहंकार के कर्म करता है, वह निर्गुण कर्ता है।

सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा, कर्मश्रद्धा तु राजसी ।

तामस्यधर्मे या श्रद्धा, मत्सेवायां(न्) तु निर्गुणा ॥ 27॥

आत्मज्ञानविषयक श्रद्धा सात्त्विक श्रद्धा है, कर्मविषयक श्रद्धा राजस है और जो श्रद्धा अधर्म में होती है, वह तामस है तथा मेरी सेवा में जो श्रद्धा है, वह निर्गुण श्रद्धा है।

पथ्यं(म्) पूतमनायस्त- माहार्यं(म्) सात्त्विकं(म्) स्मृतम् ।

राजसं(ञ्) चेन्द्रियप्रेष्ठं(न्), तामसं(ञ्) चार्तिदाशुचि ॥ 28॥

आरोग्यदायक, पवित्र और अनायास प्राप्त भोजन सात्त्विक है। रसनेन्द्रिय को रुचिकर और स्वाद की दृष्टि से युक्त आहार राजस है तथा दुःखदायी और अपवित्र आहार तामस है।

सात्त्विकं(म्) सुखमात्मोत्थं(वँ), विषयोत्थं(न्) तु राजसम् ।

तामसं(म्) मोहदैन्योत्थं(न्), निर्गुणं(म्) मदपाश्रयम् ॥ 29॥

अन्तर्मुखता से-आत्मचिन्तन से प्राप्त होने वाला सुख सात्त्विक है। बहिर्मुखता से-विषयों से प्राप्त होने वाला राजस है तथा अज्ञान और दीनता से प्राप्त होने वाला सुख तामस है और जो सुख मुझसे मिलता है, वह तो गुणातीत और अप्राकृत है।

द्रव्यं(न्) देशः(फ्) फलं(ङ्) कालो, ज्ञानं(ङ्) कर्म च कारकः ।

श्रद्धावस्थाकृतिर्निष्ठा, त्रैगुण्यः(स्) सर्व एव हि ॥ 30॥

उद्धव जी! द्रव्य (वस्तु), देश (स्थान), फल, काल, ज्ञान, कर्म, कर्ता, श्रद्धा, अवस्था, देव-मनुष्य-तिर्यगादि शरीर और निष्ठा-सभी त्रिगुणात्मक हैं।

सर्वे गुणमया भावाः(फ्), पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः ।

दृष्टं(म्) श्रुतमनुध्यातं(म्), बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ ॥ 31॥

नररत्न! पुरुष और प्रकृति के आश्रित जितने भी भाव हैं, सभी गुणमय हैं-वे चाहे नेत्रादि इन्द्रियों से अनुभव किये हुए हों, शास्त्रों के द्वारा लोक-लोकान्तरों के सम्बन्ध में सुने गये हों अथवा बुद्धि के द्वारा सोचे-विचारे गये हों।

एताः(स्) सं(म्)सृतयः(फ्) पुं(म्)सो, गुणकर्मनिबन्धनाः ।

येनेमे निर्जिताः(स्) सौम्य, गुणा जीवेन चित्तजाः ।

भक्तियोगेन मन्निष्ठो, मद्भावाय प्रपद्यते ॥ 32॥

जीव को जितनी भी योनियाँ अथवा गतियाँ प्राप्त होती हैं, वे सब उनके गुणों और कर्मों के अनुसार ही होती हैं। हे सौम्य! सब-के-सब गुण चित्त से ही सम्बन्ध रखते हैं जो जीव उन पर विजय प्राप्त कर लेता है, वह भक्तियोग के द्वारा मुझ में ही परिनिष्ठ हो जाता है और अन्ततः मेरा वास्तविक स्वरूप, जिसे मोक्ष भी कहते हैं, प्राप्त कर लेता है

तस्माद् देहमिमं(लँ) लब्ध्वा, ज्ञानविज्ञानसम्भवम् ।

गुणसं(ङ्)गं(वँ) विनिर्धूय, मां(म्) भजन्तु विचक्षणाः ॥ 33॥

यह मनुष्य शरीर बहुत दुर्लभ है। इसी शरीर में तत्त्वज्ञान और उसमें निष्ठारूप विज्ञान की प्राप्ति सम्भव है; इसलिये इसे पाकर बुद्धिमान पुरुषों को गुणों की आसक्ति हटाकर मेरा भजन करना चाहिये।

निःसं(ङ्)गो मां(म्) भजेद् विद्वा- नप्रमत्तो जितेन्द्रियः ।

रजस्तमश्चाभिजयेत्, सत्त्वसं(म्)सेवया मुनिः ॥ 34॥

विचारशील पुरुष को चाहिये कि बड़ी सावधानी से सत्त्वगुण के सेवन से रजोगुण और तमोगुण को जीत ले, इन्द्रियों को वश में कर ले और मेरे स्वरूप को समझकर मेरे भजन में लग जाये। आसक्ति को लेशमात्र भी न रहने दे।

सत्त्वं(ञ्) चाभिजयेद् युक्तो, नैरपेक्ष्येण शान्तधीः ।

सम्पद्यते गुणैर्मुक्तो, जीवो जीवं(वँ) विहाय माम् ॥ 35॥

योगयुक्ति से चित्तवृत्तियों को शान्त करके निरपेक्षता के द्वारा सत्त्वगुण पर भी विजय प्राप्त कर ले। इस प्रकार गुणों से मुक्त होकर जीव अपने जीव भाव को छोड़ देता है और मुझसे एक हो जाता है।

जीवो जीवविनिर्मुक्तो, गुणैश्चाशयसम्भवैः ।

मयैव ब्रह्मणा पूर्णो, न बहिर्नान्तरश्चरेत् ॥ 36॥

जीव लिंग शरीररूप अपनी उपाधि जीवत्व से तथा अन्तःकरण में उदय होने वाली सात्वादि गुणों की वृत्तियों से मुक्त होकर मुझ ब्रह्म की अनुभूति से एकत्व दर्शन से पूर्ण हो जाता है और वह फिर बाह्य अथवा आन्तरिक किसी भी विषय में नहीं जाता।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्)

सं(म)हितायामेकादशस्कन्धे पञ्चविं(म्)शोऽध्यायः ॥

YouTube Full video link

https://youtu.be/i47eky4M-LE